गाँधी की दृष्टि में शिक्षा और धर्मः एक अवलोकन

डॉ० माईकल
स्नातकोत्तर गाँधी विचार विभाग
तिलका माँझी भागलपुर, विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार
ईमेलः drmaikalbh@gmail.com

सारांश

शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी को आदर्श नागरिक, आदर्श देशभक्त और परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए उसे एक रत्न बनाना है। गांधी शिक्षा को आध्यात्मिक लक्ष्यों की सिद्धि से जोड़ते हैं, लेकिन उनकी आध्यात्मिकता जगत् से पलायनवादी नहीं है। 'आर्थिक नींव से हीन आध्यात्मिकता लंगड़ी है।' गांधी शिक्षा को कमाई का जरिया मानने को अनुचित मानते हैं तथा शिक्षा को धर्म–नैतिकता से जोड़ना आवश्यक बताते हैं, तभी शिक्षा सम्पूर्ण मनुश्य निर्माण करने का उत्तम साधन बन सकेगी। हमें देर–सबेर इस पर सोचना ही होगा। लार्ड स्नो ने कहा है, "यह कहना तो तथ्याधारित न होकर कुछ भावुकतापूर्ण होगा कि हमने अपने आप को शिक्षित न किया, तो हम बर्बाद हो जाएंगे, लेकिन यह बात करीब–करीब सही मालूम होती है कि हमने अपनी शिक्षा की व्यवस्था न की, तो अपने जीवनकाल में ही हमें मनुष्य को तेजी से पतनोन्मुख होते हुए देखना होगा। अक्तूबर 1937 में वर्धा में राष्ट्रीय सेवकों के सम्मेलन में राष्ट्रीय शिक्षा के संबंध में चार प्रस्ताव स्वीकार किए गए – 1. सप्तवर्षीय निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा। 2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा। 3. उद्योग के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था। 4. स्वावलंबन पर आधारित शिक्षा।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 12.02.2022
Approved: 10.03.2022

डॉ० माईकल

गाँधी की दृष्टि में शिक्षा और धर्मः एक अवलोकन

RJPP Oct.21-Mar.22,
Vol. XX, No. I,

pp.090-097
Article No. 10

Online available at *:*
https://anubooks.com/rjpp-2022-vol-xx-no-1

प्रस्तावना

शिक्षा की समस्याएँ हमारे युग की गंभीरतम समस्याओं का प्रतिबिंब मात्र हैं। इन्हें संगठन, प्रशासन या अधिक रुपया खर्च करके नहीं सुलझाया जा सकता, हालांकि इन सबका अपना महत्त्व है। हम दरअसल एक तत्त्वमीमामांसीय रोग के शिकार हैं। इसलिए इसका इलाज भी तत्त्वमीमांसीय ही होना चाहिए। जो शिक्षा हमारी मुख्य धारणाओं को सुस्पष्ट नहीं करती, वह केवल प्रशिक्षा है या मात्र एक व्यसन है। सच बात यह है कि हमारी मुख्य धारणाएँ ही गड़बड़ा गई हैं और जब तक आज का तत्त्वमीमांसा विरोधी वातावरण बना रहेगा, अव्यवस्था और बढ़ती जाएगी। ऐसी हालत में शिक्षा मनुष्य का सबसे बड़ा बनाने के बजाय विनाश का माध्यम ही बनेगी।[1] आज यह बड़े जोर–शोर से कहा जा रहा है– "अब परिस्थिति भिन्न है। विकसित देशों पर, जब वे विकास के प्रारम्भिक चरणों से गुजर रहे थे, ऐसा कोई बोझ नहीं थे, जिसे आज के अल्पविकसित देश उठा रहे हैं क्योंकि वर्तमान प्रौद्योगिकी और उपलब्ध ज्ञान श्रमजीवी वर्ग को अधिक–से–अधिक तकनीकी कुशलता और शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य करते हैं। यदि कोई देश आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहता है और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहता है, तो उसे अपनी सम्पूर्ण जनता को शिक्षित करना चाहिए।"[2] इस प्रचलित शिक्षा के बारे में भगवानदास केला कहते हैं– "यह शिक्षा संसार के लिए कल्याणकारी नहीं, विनाशकारी है; हम मानवता का विकास करने में सहायक न होकर बाधक हैं। हमें कुछ खास बौद्धिक विषयों की शिक्षा की जगह जीवन की शिक्षा मिलनी चाहिए, जिससे हम अपने समाज के लिए अच्छे उपयोगी अंग बनें, सबकी सेवा–सहायता में हमारी शक्ति समय लगे। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा पद्धती में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।[3]

शिक्षा का यह उद्देश्य नहीं होगा कि वह ऐसा विशिष्ट वर्ग पैदा करे, जो उत्पादक शारीरिक श्रम को हेय समझे और स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर अपनी शिक्षा और बुद्धि का उपभोग कर निर्धनों और आवश्यकताग्रस्त लोगों के बल पर मोटा हो; बल्कि यह होगा कि लोग जीवन की कला सीखें–उत्पादकों के समाज में रहना सीखें श्रम के गौरव और आवश्यकता को समझें, अपने आस–पास के समाज का ख्याल रखने और उनकी माँगों को समझने लगें, अपने और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझकर पूरा करने को तत्पर होना सीखें, और अपनी बुद्धि तथा शक्ति का विकास करके सबको ज्ञान देने तथा समाज का कल्याण करने में उनका उपयोग करना सीखें। यह शिक्षा जीवन के लिए और प्रत्यक्ष जीवन के द्वारा होगी। उसे समाज की जरूरतों के साथ जोड़ दिया जाएगा और किसी समाजोपयोगी उत्पादन क्रिया के द्वारा वह दी जाएगी।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में, "विज्ञान की ऐसी दिग्विजय पहले कभी नहीं हुई थी; अपने पर्यावरण पर मनुष्य का जैसा सम्पूर्ण नियंत्रण आज है, वैसा पहले कभी नहीं था और न ही प्रगति की रफ्तार जितनी तेज आज है, उतनी पहले कभी थी। हम अनेक काम की विधि तो जान गए हैं; लेकिन क्या हम यह जानते हैं कि हमें करना क्या चाहिए? आर्टेग ई गासेट ने कहा है, "हम मनुष्य के रूप में विचारों के बिना जीवित नहीं रह सकते। विचार ही बताते हैं कि हम क्या करें। एक काम को न करके दूसरा काम करना[4] ही जीवन है।" प्रश्न है कि शिक्षा का अर्थ क्या है? क्या यह उन विचारों का संचरण है, जो मनुष्य को कई विकल्पों में से एक को चुनने में सहायता देते हैं, अथवा आर्टेग के ही शब्दों में "जो हमें निरर्थक त्रासदी या आन्तरिक अवमानना से ऊपर उठकर जिन्दगी को जीने में हमारी सहायता करते हैं।" ई. एफ. शुमाकर इस संबंध में कहते हैं कि विज्ञान और इंजीनियर हमें

तकनीकी जानकारी देते है, लेकिन इस जानकारी का अपने आपमें कोई उपयोग नहीं है, यह एक लक्ष्यहीन साधन है, मात्र एक संभावना है, एक अपूर्ण वाक्य है। जिस प्रकार पियानो संगीत नहीं है, उसी प्रकार तकनीकी जानकारी भी संस्कृति नहीं है। क्या शिक्षा इस अपूर्ण वाक्य को पूरा करने में हमारी सहायता कर सकती है? क्या यह एक संभावना को मानवहित के लिए वास्तविकता में बदल सकती है? यदि न्यूक्लीय युग ने नए खतरे पैदा कर दिए हैं; यदि जनन इंजीनियरी ने नई बुराइयों के लिए द्वार खोल दिए हैं; यदि वाणिज्यवाद नए–नए लोभ–लालचों का जन्मदाता है तो इन सभी समस्याओं का समाधान अधिक और बेहतर शिक्षा की व्यवस्था करके किया जा सकता है। गांधी कहते हैं, "इस समय जो शिक्षा प्रणाली प्रचलित है और जो भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सर्वथा अनुपयुक्त मानी जाती है, वह पाश्चात्य प्रणाली की भोंडी नकल है।"

गांधी पश्चिम के इस अंधाधुंध नकल के सख्त खिलाफ हैं। वे कहते हैं, "हमलोगों में अपनी हर चीज का मुकाबला पश्चिमी सभ्यता के साथ करने का रिवाज हो गया है। हम कहते हैं, कि हमारी पूर्वी सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से काफी अच्छी है। परन्तु, हमारा आचरण इससे उलटा है। इसलिए भारतीय विद्यार्थियों कि क्षीयक्षण पद्धति शुद्ध नहीं रही; संकर हो गई है। हमारे विद्यालयों में से हम अपने प्राचीन ऋषि–मुनियों के वारिस उत्पन्न नहीं कर पाते। यह बड़े दुःख की बात है। इस बात पर मैं बहुत समय से मनन करता आ रहा हूँ। भारत की शिक्षा को लेकर गांधी की स्पष्ट मान्यता है कि, देश का आधार जिस धंधे पर हो, उस धंधे का सामान्य ज्ञान सब विद्यार्थियों को देना चाहिए। इस सिद्धांत को कोई अस्वीकार नहीं करेगा। इस सिद्धांत के अनुसार हमारे सब विद्यार्थियों को खेती और बुनने का काम सीखना चाहिए, क्योंकि भारतवर्ष के प्रायः 95 फीसदी मनुष्य खेती के काम में लगे हुए हैं। पहले इनमें से नब्बे फीसदी बुनने का काम भी करते थे। जब तक शिक्षित वर्ग इन दो बातों पर ध्यान नहीं देगा, तब तक हम अपने करोड़ों किसानों और लाखों जुलाहों के दुःख को बिल्कुल नहीं समझ सकते और न इन धंधों में ही कुछ सुधार हो सकता है। यदि हमारा शरीर तंदुरुस्त न होगा, तो हम कुछ काम नहीं कर सकते। इसलिए लड़कों को बचपन से आरोग्यशास्त्र की शिक्षा देनी आवश्यक है।[5] इसलिए वर्तमान शिक्षा को गांधी पाखंड मानते हैं। उनकी मान्यता है कि 'शिक्षा के आधारभूत सिद्धांतों में एक सिद्धांत यह है कि समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इसकी रचना की जानी चाहिए।'[6] पिगु ने शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए कहा है– "शिक्षा का उद्देश्य ऐसे मनुष्यों का सृजन करना है जो नए–नए काम करने में सक्षम हो; जो दूसरे लोगों के कार्यों को केवल दोहराए नहीं। और ऐसे मनुष्यों का सृजन करना है, जो रचना, अनुसंधान और आविष्कार कर सकें, जिनके मस्तिष्क समीक्षा और परीक्षण कर सकें, जो दूसरों के विचारों को तर्क द्वारा परखने में समर्थ हों।"[7] गांधी ने स्पष्ट कहा है, "मेरी दृष्टि से विचार करने की कला सच्ची शिक्षा है। यह कला हाथ आ जाए तो सारी कलाएं उसके पीछे सुंदर रीति से सज जाएँ।"[8] गांधी शिक्षा के साहित्यिक पहलू से सांस्कृतिक पहलू पर ज्यादा जोर देते हुए कहते हैं कि, "मैं शिक्षा के साहित्यिक पहलू से सांस्कृतिक पहलू को अधिक महत्त्व देता हूँ। सांस्कृतिक नींव है; वह पहली चीज है।"[9] गांधी के लिए शिक्षा का बुनियादी कार्य है–विद्यार्थी को सत्य की, परमात्मा की खोज में सहायता करना, न कि केवल समाज के बंधे–बंधाये ढाँचे में रहने के लिए तैयार करना।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि "समस्त शिक्षा का सार दया है–सबके प्रति दया, मित्रों के प्रति, मनुष्यों और पशुओं के प्रति। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना है, जो ब्रह्मचर्य का

कठोरता से पालन करने से ही हो सकता है।[11] 23 दिसंबर, 1916 ई. को प्रयाग की एक सार्वजनिक सभा में प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा पर अपने व्याख्यान में गांधी ने कहा था कि, "भारत में प्राचीन काल में शिक्षा का आधार संयम और ब्रह्मचर्य था। यह इसी शिक्षा प्रणाली का प्रताप था कि हजारों वर्शों से अनेक प्रकार के आघात सहने पर भी भारतीय सभ्यता आज तक जीवित है जबकि यूनान, रोम तथा मिस्र की सभ्यता लुप्त हो गई है। इसमें संदेह नहीं कि इस समय भारत में एक नई सभ्यता कि हवा बह निकली है। लेकिन, मुझे पूरा यकीन है की थोड़े ही समय में यह बात खत्म हो जाएगी और फिर से भारतीय सभ्यता का प्रचार होगा। प्राचीन काल में जीवन का आधार संयम था, पर आजकल भोग–विलास ही प्रधान है। इसका फल यह हुआ है कि लोग बलहीन और कायर हो गए हैं और सत्य को भूल बैठे हैं। हमलोग इस समय दूसरी सभ्यता के फेर में पड़े हुए हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी नई परिस्थिति के अनुकूल अपनी पुरानी सभ्यता में कुछ फेरफार कर लें, लेकिन हमारी जिस प्राचीन सभ्यता को अनेक यूरोपीय विद्वान भी सर्वश्रेष्ठ मानते है, उसमें हमें कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं, करना चाहिए। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य सभ्यता कि भौतिक शक्तियों से टक्कर लेने के लिए उस सभ्यता के उपायों और साधनों को ग्रहण करना आवश्यक है, लेकिन भारतीय सभ्यता का प्रधान आधार आध्यात्मिक बल है, वह भौतिक बल से कहीं बढ़–चढ़कर है। भारतवर्ष प्रधानतःहरम भूमि है।"[12] हमारे यहाँ तपोवन थे। वहाँ गुरु अपने शिष्यों को अपनी परम्परा में दीक्षित करता था। जीवन, धर्म, सत्य, असत्य सबका ज्ञान करता था। राजा का बेटा वहाँ जाकर एक किसान के बेटे कि तरह गुरु द्वारा दिया हुआ जीवन जीता था। अपने अहं को समाज को समर्पित करने का ढंग सिखाता था। गुरु कहता था। जाओ, जो कुछ सीख है, सामाजिक जीवन के अनुभावों में घुला–मिला दो। भिक्षा मांगकर जीवन जीना परजीवी होना नहीं था, अपने अहं को उस व्यक्ति के अहं के साथ जोड़ना था, जो साधनहीन है, जिसके पास भिक्षावृत्ति के सिवाय और कोई साधन नहीं। यही सामूहिक जीवन और उनकी भ्रांतियों को समझने का रास्ता है।[13]

धर्म–दर्शन पर आधारित समग्र शिक्षा की बात करते हुए गांधी कहते हैं– "शिक्षा एक स्वतंत्र धर्म–दर्शन है। शिक्षा का अर्थ साधना है। वह तो धर्म का सर्वस्व है। शिक्षा जीवन का एक अंग नहीं, बल्कि शिक्षा में जीवन का सर्वांग आ जाता है, और आना चाहिए। इस जीवन–दर्शन का जिसे साक्षात्कार हुआ है, वही शिक्षा का ऋषि हैय वही शिक्षा पथ को प्रदीप्त करेगा; वही धर्मकार है, क्योंकि समाज धारण का रहस्य उसे अवगत है।"[14] 14 अक्तूबर, 1927 ई. को त्रिचुर की सभा में छात्रों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा–"सही या गलत, सभी शिक्षाशास्त्रियों का यह दावा है कि शिक्षा को धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से मैं इस विचार से सदा और सर्वथा असहमत रहा हूँ, लेकिन जैसी कि स्थिति है, उसमें भी छात्रों के लिए किसी–न–किसी अवस्था में कुछ धार्मिक शिक्षा प्राप्त करना, कुछ धार्मिक सांत्वना प्राप्त करना जरूरी है। दुर्भाग्यवश जो माता–पिता अपने लड़कों को इन स्कूलों में भेजते हैं, उनके घर लगभग उखड़ चुके हैं। उनमें अपने लड़के और लड़कियों को यह आवश्यक शिक्षा देने की न तो योग्यता है और न इच्छा ही रही है। वह धार्मिक और नैतिक वातावरण, जो हम मानते हैं कि एक समय भारत के प्रत्येक घर और प्रत्येक पुरखे में मौजूद था, आज बिलकुल ही नहीं रहा, लेकिन ईश्वर का धन्यवाद है कि छात्रों को निराशा महसूस करने की जरूरत नहीं रही है। अगर आपके अंदर धार्मिक और नैतिक प्रवृत्ति है, जैसा कि हममें से हरएक के अंदर होनी चाहिए, तो हमारे लिए अपने आपको आवश्यक प्रशिक्षण दे सकना संभव है।

गांधी कहते हैं कि हमें समझ लेना चाहिए कि धार्मिक और नैतिक शिक्षा से क्या अभिप्राय है। दूसरे शब्दों में कहें, तो इसका हेतु चरित्र निर्माण के सिवा कुछ नहीं है, और प्रत्येक लड़का और प्रत्येक लड़की सहज ही जानते हैं कि चरित्र किसे कहते हैं। ईश्वर है, यह बात आपको माता–पिता या किसी धार्मिक पुरुष से जानने कि जरूरत नहीं है। इस अपरिहार्य आस्था के बिना मेरी राय में चरित्र का निर्माण कर सकना असंभव है। यह आस्था चरित्र का आधार है। इसलिए मैं लड़कों और लड़कियों से कहता हूँ "ईश्वर में आस्था, और इस प्रकार स्वयं अपने आपमें आस्था को कभी मत छोड़ो और याद रखो कि यदि तुम अपने मन में एक भी बुरे विचार को, एक भी पापपूर्ण विचार को जगह देते हो, तो इसका मतलब है कि तुम वह विश्वास खो बैठे हो। "असत्य, अनुदारता और हिसा का उस विश्वास से कटाई कोई संबंध नहीं है। याद रखें कि इस संसार में हमारा सबसे बड़ा शत्रु हम स्वयम् हैं। 'भगवद्गीता' के लगभग प्रत्येक श्लोक में यह बात कही गई है। यदि मुझे 'सरमन ऑफ द माउंट' कि शिक्षा का सार बताना हो, तो मैं यही उत्तर पाता हूँ। 'कुरान' के अपने अध्ययन से भी मैं इसी अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ।"[15]

गांधीवादी चिंतक निर्मला देशपांडे भारत की शिक्षा के बारे में कहती हैं, "इस देश की शिक्षा में वेद–उपनिषद्–गीता के साथ–साथ कुरान, बाईबिल, धम्मपद, गुरुग्रंथ साहिब, समण सुत्तमम अवेस्ता तोरा आदि सभी के अंशों का समान आदर के साथ समावेश होना चाहिए। संसार के विभीन्न देशों में से किसी देश के बच्चे बाइबिल पढ़ेंगे तो किसी देश के बच्चे कुरान पढ़ेंगे, कहीं पर बौद्ध धर्म की पढ़ाई होगी, तो कहीं यहूदी धर्म की पढ़ाई होगी। किन्तु, भारत ही एक ऐसा देश है, जहाँ के बच्चे इन सभी धर्मग्रंथों को जानेंगे, पढ़ेंगे और सबका आदर करेंगे। भारत की इस विशेषता की रक्षा करने वाली शिक्षा पद्धति ही हमारी शिक्षा पद्धति हो सकती है।[16] गांधी की धार्मिक शिक्षा का अभिप्राय, "नैतिक शिक्षा अर्थत् धर्म–बुद्ध का विकास। यहाँ धर्म का अर्थ नवाज पढ़ना या मंदिर में जाना नहीं है, बल्कि अपने आपको और ईश्वर को पहचानना है।[17] फ्रोबेल ने शिक्षा का लक्ष्य बताते हुए कहा है– "मनुष्य को एक चिंतनशील बुद्धिमान अस्तित्व के रूप में, जो आत्म चौतन्य की ओर अग्रसर हो, दैवी एकत्व के आभ्यंतरिक नियम के शुद्ध निरंजन प्रबुद्ध एवं स्वतंत्र प्राकट् की ओर ले जाना, और उसके साधनों की प्राप्ति का मार्ग दिखाना ही शिक्षा है यह एकत्व ईश्वर है।[18] वृहदारण्यक उपनिषद् में प्रार्थना की गई है– "हे ईश्वर मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर प्रेरित करो तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।" शिक्षा का यही अर्थ है कि जो भीतर है, उसे बाहर खींच लाना।[19] गांधी कहते हैं, "हम सबमें दैवी और असुरी प्राकृति कार्य कर रही है, इसलिए थोड़ी बहुत अशांति रहेगी। उससे डरने की कुछ आवश्यकता नहीं है। प्रयत्नपूर्वक निग्रह करते रहने से असुरी प्राकृति का नाश हो सकता है, परंतु दिल में पूरा विश्वास होना चाहिए कि दैवी प्रकृति को ही सहाय देना हमरा कर्त्तव्य है।"[20] रमेण चटर्जी के कलकत्ता विश्वद्यालय कि इंटरमीडिएट कक्षा में प्रवेश लेने पर 20 जुलाई, 1945 को गांधी ने उन्हें पत्र में लिखा कॉलेज की तालीम की मेरे पास कोई कीमत नहीं है। जो लड़के निकलते हैं, सब के करीब–करीब नौकरी करते हैं और नौकरी भी ऐसी, जिससे देश को लाभ नहीं पहुँचता, लेकिन हानि ही होती है।[21] जे. कृष्णमूर्ति शिक्षा के गूढ़तम उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं। "हम कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लें, किसी उद्योग में लग जाएँ, क्या शिक्षा का बस इतना ही कार्य है अथवा शिक्षा का कार्य है कि वह हमें बचपन से ही जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने में सहायता करे? कुछ उद्योग करना और अपनी जीविका कमाना जरूरी हैय लेकिन क्या

यही सब कुछ है? क्या हम केवल इसीलिए शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं? निस्संदेह केवल उद्योग या कोई व्यवसाय ही जीवन नहीं है। जीवन बड़ा अद्‌भुत है, यह असीम और अगाध है, यह अनंत रहस्यों को लिए हुए है, यह एक विशाल साम्राज्य है, जहाँ हम मानव कर्म करते हैं और यदि हम अपने आपको केवल आजीविका के लिए तैयार करते हैं, तो हम जीवन का पूरा लक्ष्य ही खो देते हैं। कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लेने और गणित, रसायनशास्त्र अथवा अन्य किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त कर लेने की अपेक्षा जीवन को सामझना कहीं ज्यादा कठिन है।[22]

किसी विज्ञान विशेष का अध्ययन करके जो जानकारी हमें मिलती है वह इतनी विशिष्ट होती है, इतनी विशेषज्ञता की होती कि उसका इस्तेमाल हम व्यापक प्रयोजनों के लिए नहीं कर सकते। इसलिए अपने युग के महन् व सशक्त विचारों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें मानविकी का आश्रय लेना पड़ता है। लेकिन, मानविकी में भी हम विशेषीकृत ज्ञान के जंजाल में फँस सकते हैं। उस सूरत में हमारा वास्ता बहुत–से लघु विचारों से ही होगा, जो प्राकृतिक विज्ञानों से ग्रहण किए जा सकने वाले विचारों की तरह ही अनुपयुक्त होंगे। लेकिन यदि हम भाग्यवान हुए (यदि इसे भागी की बात माना जा सके) तो हमें ऐसा गुरु भी मिल सकता है, जो हमारे 'मन की दुविधाओं को दूर' कर दे, हमारे विचारों को, उन महान् व सार्वभौम विचारों को, जो पहले से ही हमारे मन में मौजूद हैं–'सुलझा दे और हमें इस योग्य बना दे कि हम अपने चारों ओर की दुनिया को समझ सकें। इस प्रक्रिया को ही वस्तुतः' शिक्षा की संज्ञा दी जानी चाहिए।[23] यदि ऊष्मा गतिकी के द्वितीय नियम के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं, तो मनुष्य के नाते मुझमें क्या कमी होगी? उत्तर हैः कुछ नहीं। शिक्षा के बारे में हक्सले को उद्धत करते हुये 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तिका में गांधी कहते हैं– हक्सले ने शिक्षा के बारे में यों कहा हैः "उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके बस रहता है, जिसका शरीर चैन और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि, शांत और न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इंद्रियाँ उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनाएँ बिल्कुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही साचा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जाएगा, क्योंकि वह कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।[24]

शरीर से पास होकर भी मन से यदि मनुष्य पास नहीं है, तो उसके समान भयंकर स्थिति दूसरी नहीं है। मन से दूर रहने वाले जब शरीर से पास आएंगे, तब मारामारी के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।[25] इसलिए गांधी बौद्धिक ज्ञान को आचरण से प्रकट होना अनिवार्य मानते हैं। 'बिना आचार के कोरा बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है, जैसा कि सुगन्धित मसाला लगाया हुआ मुर्दा।[26] शिक्षा का पहला और सबसे जरूरी काम मूल्य संबंधी विचारों का संचरण है, अर्थात् लोगों को यह बताना है कि वे अपने जीवन का क्या करें। इसमें संदेह नहीं कि वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय तकनीकी जानकारी के संचरण की भी जरूरत है, लेकिन महत्त्व की दृष्टि से इसका स्थान दूसरा आता है, क्योंकि यह स्पष्टतः मूर्खता की बात होगी कि हम बिना इस बात का निश्चय किए कि लोगों को उनके प्रयोग का समुचित ज्ञान है अथवा नहीं, उनके हाथों में बड़ी–बड़ी शक्तियां सौंप दें। आज निस्संदेह सारी मानव जाति मृत्यु के कगार पर खड़ी है, इसलिए नहीं कि हमारे पास वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक तकनीकी जानकारी का अभाव है, बल्कि इसलिए कि हम विवेक का इस्तेमाल किए बगैर इस तकनीकी जानकारी को ध्वंसक

कार्यों में लगा सकते हैं। शिक्षा पर अधिकाधिक बल देने का लाभ तभी है जब वह हमारे विवेक को जाग्रत करे।

गांधी जी जानते थे कि दूषित जीवन पद्धति से सभ्यता का सर्वनाश होता है। अतः शांति सम्पन्न जगत और शांतिसम्पन्न भारत का निर्माण एक अहिंसात्मक जीवन अथवा समग्र जीवन के द्वारा ही हो सकता है। गांधी आत्मज्ञान के विकास पर बल देते हुए कहते हैं–"विद्यार्थी अर्थत् विद्या का भूखा। विद्या अर्थात् जानने योग्य ज्ञान। जानने योग्य तो केवल आत्मा ही है, इसलिए विद्या अर्थात् आत्मज्ञान। लेकिन, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित आदि जानना चाहिए। ये सब साधान रूप हैं। इन विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अक्षर ज्ञान होना आवश्यक है। अक्षर ज्ञान के बिना भी इन विषयों को जानने वाले व्यक्ति हमने देखे हैं। जो व्यक्ति इतना जानता है, वह अक्षर ज्ञान अथवा साहित्यादि के ज्ञान के पीछे दीवाना नहीं, वह तो आत्मज्ञान ही के पीछे पागल रहेगा। आत्मज्ञान की प्राप्ति में जो विषय विघ्नरूप हैं, उनका त्याग करेगा और जो सहायक हैं, उनका पालन करेगा। इस बात को समझने वाले व्यक्ति का विद्यार्थी जीवन कभी समाप्त नहीं होता और वह खाते, पीते, सोते, खेलते, खोदते, बुनते, काटते कोई भी काम करते समय ज्ञान प्राप्ति करता ही रहता है। इसके लिए पर्यवेक्षण शक्ति को विकसित करना चाहिए। उस व्यक्ति को सर्वदा शिक्षकों के समूह की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि वह सभ्यता विश्व को शिक्षक के रूप में मानकर उससे गुण ग्रहण करता रहता है। बिहार विद्यापीठ के दीक्षांत समारोह में 30 जनवरी, 1927 ई. को उन्होंने कहा कि, "यदि विद्यापीठ द्वारा एक भी आदर्श विद्यार्थी और आदर्श अध्यापक प्रस्तुत हो सके, तो उसे अपने अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने के लिए इससे अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इन संस्थाओं का प्रयोजन क्या है? मणियों की खोज। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि मणियाँ कम हैं या ज्यादा। अवश्य ही वे 'निर्मलतम एवं सौम्य प्रकाश फैलानेवाले' हों। हमारा उद्देश्य और समूची शिक्षा का ही उद्देश्य होना चाहिए आज जिस दुनिया में हम रह रहे हैं, उसे समझना और अपने विकल्पों को चुनना।

संदर्भ

1. शुभकर, ई. एफ. *समुचित तकनीक बेहतर भी, कारगर भी.* **पृष्ठ 71.**
2. जिमलमैन, एम. (1971). *लेबर, एजुकेशन एंड डेवलपमेंट, एजुकेशन इन नेशनल डेवलपमेंट (सं.) मेंडान ऐडक्स.* मैकवेः न्यूयार्क. 3. **पृष्ठ 99.**
3. केला, भगवानदास. *जीवन धर्मः अहिंसा.* **पृष्ठ 188.**
4. शुभकर, ई. एफ. *समुचित तकनीक बेहतर भी, कारगर भी.* पूर्वोक्त. **पृष्ठ 60.**
5. सं०गाँ०व०, खंड–13. **पृष्ठ 360.**
6. वही. **पृष्ठ 41.**
7. पिगू, ज्यां. (1970). चार्ल्स सिल्बर मैन कृत क्राइसिस इन दि क्लासरूम. विंटेज बुक्सः न्यूयार्क **पृष्ठ 218.**
8. गांधी, म. क. (1932). *यरवदा मंदिर,* 28 अगस्त।
9. गांधी, म. क. (1946). हरिजन, 5 मई।
10. कृष्णमूर्ति, जे. (1984). संस्कृति का प्रश्न, कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया. राजघाटः वाराणसी, दूसरा संस्करण. **पृष्ठ 229.**

11. गांधी, म. क. (1921). बम्बई के नेशनल कॉलेज में दिए गए भाषण का अंश. 16 मार्च.
12. सं. गाँ. वा., खंड–13. **पृष्ठ 321.**
13. किशोर, गिरिराज. पहला गिरमिटिया. **पृष्ठ 590.**
14. गांधी, म. क. (1930). *हिन्दी नवजीवन.* 23 जनवरी.
15. गांधी, म. क. (1927). हिन्दू, 17 अक्तूबर.
16. देशपांडे, निर्मला. *गांधी और ग्राम स्वराज.* गांधी स्मृति एवं दर्शन समितिः नई दिल्ली, **पृष्ठ 10.**
17. गांधी, म. क. (1920). नवजीवन. 25 अप्रैल.
18. Robert, Ulich. (1945). *History of education thought*. American, Book. **Pg. 286.**
19. गांधी, म. क. (1924). *हिन्दी नवजीवन.* 15 जून.
20. सं. गां. वा., खंड–24, **पृष्ठ 39–40.**
21. सं. गां. वा.; खंड–81, **पृष्ठ 13.**
22. कृष्णमूर्ति, जे. (2004). संस्कृति का प्रश्न. कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया. राजघाटः वाराणसी. पाँचवाँ संस्कारण. **पृष्ठ 229.**
23. शुमाकर, ई. एफ. समुचित तकनीक बेहतर भी, कारगर भी. पूर्वोक्त. **पृष्ठ 63.**
24. गांधी, म. क. *हिन्द स्वराज्य.* पूर्वोक्त. **पृष्ठ 78.**
25. धर्माधिकारी, दादा. क्रांतिवादी तरुणों से. **पृष्ठ 32.**
26. गांधी, म. क. (1921). *यंग इंडिया.* 12 सितम्बर.